



शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

Online ISSN-3048-9296

Vol.-1; issue-2 (July-Dec.) 2024

Page No- 17-22

©2024 Shodhaamrit (Online)

www.shodhaamrit.gyanvividha.com

डॉ.उमेश कुमार शर्मा

सहायक प्राध्यापक सह अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
श्री राधाकृष्ण गोयनका महाविद्यालय,
सीतामढ़ी, बिहार

Corresponding Author :

डॉ.उमेश कुमार शर्मा

सहायक प्राध्यापक सह अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
श्री राधाकृष्ण गोयनका महाविद्यालय,
सीतामढ़ी, बिहार

दलित संत-साहित्य और भारतीय ज्ञान- परंपरा

भारतवर्ष विद्वानों, पंडितों, संतों और मनीषियों का देश है। यहाँ की ज्ञान- परंपरा सर्वाधिक पुरातन और व्यापक है। भारतीय ग्रंथ 'ऋग्वेद' न केवल भारत, बल्कि संसार का सबसे प्रचीन ग्रंथ है। भारतीय ज्ञान- परंपरा की शुरुआत वहीं से हो जाती है। चारों वेदों के साथ ही ब्राह्मण-ग्रंथों, उपनिषदों, आरण्यक ग्रंथों तथा पुरानों ने भारतीय ज्ञान- परंपरा को समृद्ध किया है। 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे आर्ष महाकाव्यों का सृजन भारत में ही हुआ। अतएव, हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि भारत के पास एक समृद्ध ज्ञान- परंपरा है। बौद्ध-साहित्य और जैन-साहित्य इसी परंपरा की अगली कड़ी है, जो कालांतर में विकसित होकर भक्तिकालीन निर्गुण संत-परंपरा का निर्माण करती है। भारतीय ज्ञान-परंपरा में संत-साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है। संत-साहित्य वस्तुतः भावात्मक एवं अनुभूतिप्रवण है, उसमें किसी शास्त्रीय परंपरा अथवा सिद्धांत के प्रति आग्रह नहीं है। यह बात साधनाक्षेत्र और साहित्य-जगत दोनों में समान रूप से लक्षित होती है। निर्गुण काव्यधारा के संत कवि सामान्यतया समाज के निम्न वर्गों में आविर्भूत हुए थे। समाज ने उन्हें कभी आदरणीय नहीं समझा। वे साधन-विहीन वातावरण में उत्पन्न हुए तथा साहित्य, भाषा, व्याकरण आदि के अनुशीलन से सर्वथा वंचित रहे। सत्य का निरूपण, सत्य का विवेचन एवं सत्य का प्रचार-प्रसार ही उनकी कविता का मूल उद्देश्य था।

निर्गुण संतों की विचारधारा के बीज सिद्ध और नाथ कवियों की रचनाओं में मिलते हैं। सिद्ध और नाथ पंथ के साधुओं के अतिरिक्त जैन और बौद्ध-धर्म से संबंधित विपुल साहित्य इस काल में लिखा गया, जो ब्राह्मण- श्रमण विवाद के कारण नष्ट कर दिया गया। बाद में जिन्हें

विद्वानों ने विदेशी - बौद्धों से या अन्य स्रोतों से प्राप्त किया। इन्हीं ग्रंथों में बौद्धों के त्रिपिटक हैं, जिनमें बुद्ध के जीवन और उनके उपदेशों को अनेक उदाहरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। थेरीगाथाएँ, बौद्ध भिक्षुणियों के गीतों का संग्रह है, जिनमें उनके स्त्री-जीवन की त्रासदी, सामाजिक स्थिति, दुख और संघर्षों का यथार्थ चित्रण मिलता है। नागार्जुन, स्वयंभू, हेमचंद्र, पुष्पदंत आदि के नीतिग्रंथों में स्त्री और दलितों की तत्कालीन स्थिति को देखा जा सकता है। इन ग्रंथों में समानता, बंधुत्व और भेदभाव -मुक्त जीवन की कल्पना की गई है, जो दलित-चेतना के सर्वथा अनुकूल है। इनमें वर्ण-व्यवस्था और लिंग-भेद पर सीधा प्रहार किया गया है।

यह सर्वविदित है कि भक्ति की उत्पत्ति दक्षिण भारत में हुई। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने स्पष्ट कहा है- "भक्ति का जो स्रोत दक्षिण की ओर से धीरे- धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से आ रहा था, उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय-क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला।" इस प्रकार उत्तर भारत में चर्चित भक्ति-आंदोलन तेरहवीं शताब्दी के बाद शुरू होता है, जिसमें संत- साहित्य की रचना होती है और कबीर, तुकाराम, रैदास, नानक, दादूदयाल, सेननाई, मीराबाई, सहजोबाई आदि संत और कवि आते हैं।

भक्तिकाल में 'निर्गुण-पंथ' एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन है, जिसने सदियों से स्थापित सामंती सोच की दिशा ही बदल दी। 'निर्गुण-काव्य', जिसे 'संत-काव्य' भी कहा गया है, पूरा का पूरा दलित- पीड़ित समाज की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। सिद्ध और नाथ के साथ ही सूफी संतों से प्रभावित संपूर्ण संत-साहित्य जाति- पाँति का आक्रोशपूर्ण विरोध और बाह्याडंबरों का प्रबल निषेध करता है।

चाहे वह उड़ीसा का 'पंचसखा संप्रदाय' हो या महाराष्ट्र का 'वारकरी' अथवा उत्तर- पश्चिम का 'निरंजनी' और 'जोगमनी संप्रदाय', सबने बौद्धों के समय से चली आ रही अहिंसा, सत्य और सदाचार को अपनाया।¹² उन्होंने प्रेम-तत्त्व को 'पीर' का रूपक बनाकर आत्मा और परमात्मा की अंतर्संबंधों पर जोर दिया और जीवमात्र को एक समझा। वे एक ऐसे धर्म और समाज की स्थापना करना चाहते थे, "जिसमें न कोई हिन्दू हो न मुसलमान, न कोई मौलवी हो न पुरोहित, न कोई शेरव हो न बरहमन, सबके सब मनुष्य हों।"¹³

भक्तिकालीन संत-साहित्य वस्तुतः एक सामाजिक- सांस्कृतिक क्रांति थी और इस क्रांति के महानायक थे- कबीर। सामाजिक श्रेणी में कबीर शूद्र थे, जाति के मुस्लिम जुलाहा। इस संप्रदाय के शेष संत और कवि भी दलित-वंचित समाज से ही आते थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के विराट व्यक्तित्व के संदर्भ में कहा है-"हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ।"¹⁴ कबीर के बारे में डॉ. बच्चन सिंह कहते हैं- "कबीर का प्रादुर्भाव एक घटना है। हिन्दी भक्तिकाव्य का प्रथम क्रांतिकारी पुरस्कर्ता। वह भी मुसलमान। किन्तु इतिहास में कुछ भी सहसा घटित नहीं होता। कबीर ने जो कुछ किया, उसके पीछे एक परंपरा है, इतिहास की एक सामंती मंजिल है, मुल्ला- पंडितों का वर्चस्व है। किन्तु कबीर के व्यक्तित्व में वह ताकत थी, जिससे सामंती व्यवस्था के इन सरमायादारों की मूर्ति तोड़ने में वे एक सीमा तक सफल हुए।"¹⁵

कबीर के जीवनकाल में सवर्ण हिन्दुओं तथा मुल्ला- मौलवियों ने उनकी दुर्दशा करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। परंतु ख्यातिलब्ध होने के पश्चात मुसलमानों ने उसे अपना कहा तो सनातनी हिन्दुओं ने

उनका ब्राह्मणीकरण कर दिया। बताया कि कबीरदास विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, जिन्हें रामानंद ने भूलवश पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे रखा था। आखिरकार इतना प्रतापी और प्रतिभासंपन्न कोई व्यक्ति मुस्लिम जुलाहा कैसे हो सकता है? कुछ ब्राह्मणवादी पंडित कबीर के इस कथन के आधार पर, 'जनम हम बाम्हन होते, ओछे करम तप होना, रामदेव चूका, पकरि जुलाहा कीना।⁶ उन्हें पैदायशी मुसलमान नहीं मानते। विदित हो कि यह पद सर्वथा प्रक्षिप्त है। यह पद 'बीजक' में नहीं पाया जाता। इसके विपरीत दलित विद्वान जोर देकर बताते हैं कि कबीर कदापि ब्राह्मण नहीं हो सकते और न ही वे निरक्षर थे। कबीर को जीवन और जगत का इतना जिस कबीर गहरा ज्ञान है, जो महान् दार्शनिक और तत्त्वज्ञानियों- सी बातें करता है, वह निरक्षर या अशिक्षित कैसे हो सकता है?

कबीरदास ब्राह्मणवादी विचारधारा के प्रबल विरोधी थे। उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ इसकी बानगी के रूप में देखा जा सकता है -

**"तन खोजो नर केरी बड़ाई,
जुगति बिना भगति किन पाई।
एक कहावत मुलाँ काजी,
राम बिना सब फोकटबाजी।।
नव ग्रिह बाभण भणता रासी,
तिनहुँ न काही जम कौ पासी।।
कहें कबीर यह तन काचा,
सबद निरंजन राम नाम साचा।।"**

कबीरदास अपने समय के दलित- वंचित जन- समुदाय की आवाज थे। वे सत्ता और जड़वादी सामाजिक- सांस्कृतिक व्यवस्था से एक साथ टकरा रहे थे। उन्होंने भारत के उत्पीड़ित जन-समुदाय की सुषुप्त चेतना को जगाया, संगठित होकर आत्मवान बनना तथा अनात्मवादी शोषकों के सामने सिर ऊँचा

करके खड़े होना और लड़ना सिखाया। -'सूरा सो पहिचानिये, जो लड़े दीन के हेत।' जैसी पंक्तियों से यही सिद्ध होता है कि कबीर स्वतंत्र चेता, क्रांतिद्रष्टा मानव और दलित वंचित समाज के अनथक योद्धा थे।

भक्तिकाल में कबीर के साथ ही नामदेव, रैदास, नानक, दादूदयाल, रज्जब, मलूकदास, सहजोबाई आदि का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। इन संतों-कवियों ने अनेक सामाजिक कुरीतियों का मुखर विरोध किया है। वर्ण-व्यवस्था, जाति- पाँति और संप्रदायगत भेद-भाव का विरोध बड़ी सटीक तर्कशीलता से किया है। उन्होंने ब्राह्मणवादियों को न केवल निरुत्तर कर दिया है, बल्कि कई जगह पर तो ऐसे लोगों की स्थिति हास्यास्पद बना दी है। देखिये कबीर के कथन में कैसी प्रहारक शक्ति है-

**"जो तूँ बाभन बाभनी जाया,
तो आन राहे काहे ना आया।
जो तूँ तुरक तुरकिनी जाया,
तो भीतर खतना क्यों न कराया।"**⁸

संतों ने अपने-अपने सांप्रदायिक सीमाओं को भी नहीं माना। तत्कालीन परिस्थितियों में मुस्लिम समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव कम ही था, क्योंकि सामाजिक दृष्टि से प्रत्येक मुसलमान बराबर का दर्जा रखता था, किन्तु हिन्दू-समाज में एक हिन्दू तथाकथित उच्च और दूसरा निम्न स्तर का माना जाता था। शूद्रों के लिए मंदिर प्रवेश निषिद्ध था। संत नामदेव के शब्दों में यह पीड़ा साकार हो गयी है-

**"हँसत खेलत तेरे देहरे आया,
भक्ति करत नामा पकरि उठाया।
हीनड़ी जाति मेरी याद कराया,
छीपे को जनम काहे को आया।"**⁹

संत तुकाराम भी शूद्र होने की पीड़ा से त्रस्त देखे गए हैं। उनकी वाणी ही साक्ष्य है। बचपन में ही

माता-पिता के देहांत के अतिरिक्त 'अन्न- अन्न' की पुकार करती भूख से व्याकुल हो पत्नी भी चल बसी, अकाल की मार, भूख और अपमान का वर्णन तुकाराम इन शब्दों में करते हैं-

"जाति शूद्र वंश किया व्यवसाय।

आदि जो है देव कुल पूज्य।।

प्रपंच-दुख से अति दुःखी भया।

जैसे पिता-मैया चले गये।।

अकाल से सूखा द्रव्य गया मान।

कहते 'अन्न- अन्न' मर गई।"10

तद्युगीन समाज में ब्राह्मण-वर्चस्व के फलस्वरूप शूद्र मानी जानेवाली जातियों का अपमान, सामाजिक वैषम्य की वेदना, माता, पिता, पत्नी, पुत्र की मृत्यु, निर्धनता और भूख से होने वाली पत्नी की दारुण मृत्यु के प्रहारों ने तुकाराम को वैराग्य लेने को विवश कर दिया। संत दादूदयाल की वाणी में स्वयं के लिए 'कमीन' और 'पिंजारा' शब्दों का प्रयोग मिलता है तथा उनके शिष्य रज्जब ने भी 'धुनी ग्रभे उत्पन्नो दादू योगन्द्रो महामुनिः' कहकर इन्हें धुनिया लिखा है। दादूपंथी भक्तों - विद्वानों द्वारा इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया जाता। तो भी यह सच है कि संतों ने जाति- पाँति का विरोध किया और अधिकांश संत निम्न जाति कुल के थे। इसे उन्होंने किसी प्रकार हीन नहीं माना, बल्कि अपनी वाणी में सगर्व अपनी जाति का उल्लेख किया है। यही नहीं दादू ने स्वयं के लिए लिखा है-

"कौन आदमी कमीण विचारा,

किस को पूजें गरीब पिंजारा।"11

रैदास संत काव्यधारा के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। कबीर की भाँति रैदास को भी पैतृक व्यवसाय विरासत में मिला था। वे बचपन से ही जूता गाँठने का काम करते थे। किन्तु उनकी मूल प्रवृत्ति भक्ति थी। वे सामाजिक भेदभाव को देखकर बहुत दुखी रहते थे।

इसलिए भी अपने आपको ईश्वर की शरण में समर्पित कर देना उनकी नियति बन गई थी। वे रोजी-रोटी के लिए जूता गाँठने का काम करते थे, किन्तु वे इतने दयालु और उदार थे कि ईश्वर-भक्त और गरीबों को मुफ्त में ही जूता बनाकर दे देते थे। संभव है कि रोजी-रोटी का कोई और उपाय या भक्ति के लिए अनुकूल वृत्ति न समझकर वे बेमन से जूता गाँठने का काम करते हों। क्योंकि उन्होंने लिखा है-

"चमरछा गाँठ न जनई। लोग गठावें पनही।"12

काशी आरंभ से ही भारत की सांस्कृतिक राजधानी रही है, किन्तु यह अजीब संयोग है कि जो ब्राह्मण-धर्म काशी में फला-फूला उसका विरोध भी वहीं से हुआ। रैदास ब्राह्मणवाद के घोर विरोधी थे। रैदास ने भारतीय समाज की जाति-व्यवस्था के प्रति क्षोभ और दुख प्रकट किया है-

"जात जात में है, ज्यों केलन के पात।

रविदास मनुख न जुर सके, जब लग जात न जात।"13

यह जाति-व्यवस्था मनुष्यता को खा रही है। इसके अंत से ही मानवता का कल्याण होगा। वे कहते हैं -

"जात-पांत के फेर में, उलझि रहयो सब लोग।

मानुषता को खात हुई रविदास जाति करि लोग।"14

संत रविदास कबीर की तरह बार-बार अपनी जाति की याद दिलाकर सामाजिक व्यवस्था को एक चुनौती ही दे रहे हैं कि देखो मैं जाति से नीच चमार हूँ। जन्म से ओछा मुझे भले ही कह लो, कर्म से तो मैं तुमसे भी बड़ा हूँ। तुम मुझे बड़ा समझो न समझो, निराकार रामचन्द्र तो हमें सम्मान देंगे ही-

"मेरी जाति कमीनी पाँति कमीनी ओछा जनमु हमारा।

तुम सरनागति राजा रामचन्द्र कहि रविदास चमारा।"15

इस प्रकार रैदास की रचनाएँ दलित चेतना से ओतप्रोत है।

अपने समय के समाज में जातिगत ऊँच-नीच

की विभीषिका के विरुद्ध कबीर की भाँति ही गुरु नानकदेव ने न केवल अपनी वाणी से तीखे प्रहार किए, बल्कि उपाय के रूप में आत्मीय समकक्षता दर्शाते हुए 'भागो' (धनिक) के भोजन को अस्वीकार कर 'लाला' (निर्धन-श्रमिक-निम्नजातीय) के भोजन को स्वीकार कर सत्कार दिया। एक पंक्ति में बैठकर लंगर गुरु - परसाद प्राप्त करने की पद्धति के बीज रोप दिए। नानक स्वयं खत्री जाति के थे। किसानी और व्यापार से उनके परिवार का गहरा संबंध था। उन्होंने भारतीय-हिन्दू समाज में निम्नजातीय लोगों को दुर्दशा, अपमान से विह्वल होकर बड़े कटु शब्दों का उपयोग किया, ऊँची जाति के घमंड में चूर लोगों को लताड़ा और स्वयं को तथाकथित नीची मानी जानेवाली जातियों के संग-साथ होने का भरोसा दिलाया -

"नीचा अंदिर नीच जाति नीची हूँ अति नीतू।

ननकू जिनके संगी साथि वडिआ सिउ किया रीस।।

जिथै नीच समाली अनि तिथै नदरि तेरी बखसीस।।

नानक उत्तम नीचु न कोई।

जायाछु जोति न पूछहू जाति।

आगै जाति न है।"¹⁶

नानक का दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य जाति में कोई भी न तो श्रेष्ठ है और न ही कोई नीच है। प्रत्येक का दूसरे मनुष्य में प्रभु की ज्योति को ही देखना चाहिए, उसकी जाति नहीं पूछनी चाहिए। ज्योति ही मृत्यु के बाद हमारे साथ रहती है, जाति नहीं रहती।

गुरु नानक एक असाधारण संत थे। वे एक ही साथ पैगम्बर, दार्शनिक, योगी, गृहस्थ, त्यागी, धर्मगुरु, समाज सुधारक, कवि, संगीतज्ञ, देशभक्त और अंततः मानवता के सच्चे पुजारी थे। नानक की शिक्षा का सार यही है कि परमात्मा एक ही है। वह अनंत, सर्वशक्तिमान और निराकार है। वह सर्वत्र व्याप्त है। बाह्य साधनों से उसे नहीं प्राप्त किया जा सकता है। परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा की शुद्धि और

व्यवहार की पवित्रता आवश्यक है। इसके लिए शुभ कार्य करने चाहिए। नानक की शिक्षा का निचोड़ नीचे की वाणी से समझा जा सकता है-

"जो नर दुख में दुख नहीं माने।

सुख सनेह अरु जाके, कंचन माटी जाने।।

नहि निन्दा नहि हरष सोक अस्तुति जाकें,

लोभ मोह अभिमाना।"

हरष सोक तैं नियारो, नाहि मान अपमाना।।

आसा मनसा सकत त्यागी कै जग तैं रहे निरासा।

काम क्रोध जेहि परसे नाहिन तेहि घट ब्रह्म निवासा।।

गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्ही तिन्ह यह जुगुति पिछानी।

नानक लीन भयो गोविंद सों ज्यों पानी संग पानी।।"¹⁷

सही अर्थों में आज यदि नानक जैसे संत नहीं हुए होते, तो भारत में दलित और अन्त्यज जातियों के लिए ईश्वर का मार्ग खोजना असंभव था। मनुष्य मात्र को समता और बंधुत्व का पाठ पढ़ाकर उसे एक 'पंगत' और 'संगत' में बैठाकर भोजन कराना और सत्संग करना नानक जैसे संतों की ही देन है। सिक्खों के 'संगत' और 'पंगत' वर्तमान सामाजिक न्याय और समरसता का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसलिए नानक का दर्शन दलित-चेतना के करीब का दर्शन है।

धर्मदास कबीर के प्रधान शिष्य थे। कबीर की वाणी और विचारों को जनता में प्रचारित करनेवाले धर्मदास का संत साहित्य में सम्मानपूर्ण स्थान है। वे जाति के बनिया थे। इनका जन्म बोधागढ़ में हुआ था। उन्होंने अपने बारे में लिखा है-

"बाँधो गढ़ है ग्राम, नाम धर्मदास कहीजै।

वैश्यकुली कुल जाति, शूद्र नहीं बात सुनीजै।।"¹⁸

भारतीय समाज व्यवस्था और जाति-भेद के खिलाफ उनके मन जो आशंका थी, कबीर के मतों से और पुष्ट हो गयी। धर्मदास ने धर्म-संबंधी अपनी जिज्ञासाओं को कबीर के समक्ष रखा और कबीर ने उनकी शंकाओं को दूर करते हुए अनेक सामाजिक-

धार्मिक कमियों को बताकर निर्गुण निराकार की उपासना का उपदेश दिया। संवाद-शैली में धर्मदास अनेक ग्रंथ मिलते हैं, जिनमें कबीर के उपदेशों की व्याख्या की गयी है। कबीर के पदों के संग्रह का श्रेय धर्मदास को ही जाता है।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान- परंपरा में दलित संत-साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। भक्ति-आंदोलन का प्रपत्तिवाद, शरणागत भक्ति, ईश्वर के प्रति संपूर्ण भाव से रागात्मक समर्पण आदि दलितों संतों के ही भाव थे, जिसने बाद में चलकर दास्य भक्ति, सख्य भक्ति आदि सगुण भक्ति के प्रकारों को जन्म दिया। उस समय मंदिरों में दलितों का प्रवेश सर्वथा निषिद्ध था। इसी कारण दलित भक्तों ने निर्गुण- निराकार मार्ग का अनुसरण किया और तमाम धार्मिक आडम्बरों का विरोध करते हुए भक्ति को सबके लिए सुलभ बनाया। वर्णाश्रमी सामाजिक व्यवस्था का विरोध करते हुए जाति- पाँति विहीन, समतामूलक समाज की स्थापना करना दलित संतों का मूल उद्देश्य था, जो उन्होंने कर दिखाया।

संदर्भ सूची : -

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण-1929 ई0, पृष्ठ सं0-54.
2. दलित साहित्य का समाजशास्त्र- डॉ. हरिनारायण ठाकुर, वाणी प्रकाशन ग्रुप, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण-2022, पृष्ठ सं0-241.
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ0 बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1996 ई., पृष्ठ सं0-84.
4. कबीर-हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1971 ई., पृ.-217.
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ0 बच्चन सिंह, पृष्ठ सं.-83.
6. वही, पृष्ठ सं.-85.

7. कबीर ग्रंथावली- श्यामसुंदर दास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2014 ई0, पृष्ठ सं0- 149.
8. पूरा कबीर- संपादक- डॉ0 बलदेव वंशी, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण-2018, पृष्ठ सं.-258 .
9. वही, पृष्ठ सं0-259.
10. वही, पृष्ठ सं0-259.
11. वही, पृष्ठ सं0-260.
12. रैदास की वाणी- बेल बेडियर प्रेस, इलाहाबाद, 1986 ई. पद संख्या- 31.
13. सूत न कपास - डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991 ई0, पृष्ठ सं0- 206.
14. वही, पृष्ठ सं0-206.
15. रैदास की वाणी- बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, पद संख्या-42.
16. पूरा कबीर -संपादक - डॉ0 बलदेव वंशी, पृष्ठ सं0 - 262.
17. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य एक रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ सं0-59-60.
18. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-2, संपादक- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1956 ई0, पृष्ठ सं0 - 339